तृतीय अध्याय
'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन

इक्कीसवीं सदी में आकर उपन्यास के कथ्य विस्तृत रूप से अचंभित करते हैं। जीवन जगत का कोई भी क्षेत्र नहीं छूटा, जहां उपन्यास रचना न हुई हो। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों से ऐसे रचनाकार आ रहे हैं जिनके अपार अनुभव हैं। जो उपन्यास के माध्यम से कई समस्याओं को उद्घाटित करती है। इन समस्याओं को हम कई रूप से देखते हैं- जैसे, भूमि अधिग्रहण और कृषक दुर्व्यवस्था, साम्प्रदायिकता का प्रतिरोध, विभाजन की त्रासदी आदि का यथार्थपरक चित्रण देखने को मिलता है।

विश्व इतिहास में दो राष्ट्रों का उदय बहुत बड़ी त्रासदी को जन्म देता है जिनमें इतना बड़ा नरसंहार हुआ और बड़ी जनसंख्या को अपने वतन से उजड़ कर दूसरे देश में पलायन करना पड़ा। नए देश में आकर शरणार्थियों को अनेक तरह की विपदाओं का सामना करना पड़ता है। विभाजन की त्रासदी का मूल कारण धार्मिक आधार था जो कि आस्था, विश्वास, रीति-रिवाजों व परम्पराओं में बंधा हुआ था। फलतः बहुसंख्यक धर्म के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप में पाकिस्तान, बांग्लादेश और भारत देशों का निर्माण हुआ। जिस धर्म का जिस क्षेत्र में बाहुल्य था वहां से दूसरे धर्म को उखाड़ फेंका गया। उन्हीं उखड़े हुए विस्थापित लोगों की पीड़ा से अवगत कराया गया। त्रासदी एक भयानक दृश्य के रूप में जीव सत्ता की असत्यता का उद्घोष करती है और जीवन संघर्ष की सार्थकता पर प्रकाश डालती है। त्रासदी ने अपनी विषय वस्तु हेतु हमेशा धार्मिक व पौराणिक आख्यानों को आधार बनाया है, जिसके फलस्वरूप त्रासदी की कथावस्तु विष की भांति एक पृथक सत्ता का निर्धारण करती है। समस्याओं को यदि भौतिक धरातल

पर उतारा जाये तो त्रासदी वाद-विवाद-प्रतिवाद की शैली को जन्म देती है। इस प्रकार त्रासदी के वर्तमान स्वर का संबंध समाज के यथार्थवाद से है।

विभाजन बनाम विस्थापन और हिंदी उपन्यास

हिन्दू-मुस्लिम विभाजन ने आपसी द्वेष व घृणा पैदा की तथा भयंकर दंगों की आग में लोग झोंक दिए गए, जिसका एकमात्र कारण 'विभाजन की राजनीति' थी। इस संत्रास को उन्हीं परिवारों को झेलना पड़ा जो हिन्दुस्तान से पाकिस्तान और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान जाने के लिए शरणार्थी बनकर दर-दर मारे फिर रहे थे। विभाजन के कारण विस्थापन होता है। विस्थापन भी हमें कई कारणों से देखने को मिलता है। विस्थापन में व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह की समस्याएँ हमें देखने को मिलती हैं। इस बंटवारे की दुर्दशा का वर्णन कई हिंदी उपन्यासों में मिलता है –'झूठा सच' (यशपाल) 'आधा गाँव' (राही मासूम रजा) 'तमस' (भीष्म साहनी). 'जुलूस' (फणीश्वरनाथ रेणु) तथा अलका सरावगी के उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' आदि। इन उपन्यासों के माध्यम से विस्थापित शरणार्थियों की समस्याएँ जानी जा सकती हैं। कोई नहीं जानता था कि इस प्रलय में वह कहां जायेंगे ? स्त्रियों के साथ बलात्कार, भूख और बीमारी से तड़पकर मरते हुए बच्चे, स्टेशन के सामने खेत में लाईन से बच्चों की समाधि, प्रणय एवं संबंधों के विछोह के विछोभ की जहरीली हवा, तमाम हत्यायें और असंख्य लोगों का भूख प्यास से तड़पना, शरणार्थी शिविरों का काला सच, भय और आतंक का साया, पुलिस और प्रशासन द्वारा प्रताड़ना, संदेहास्पद जीवन और दोयम दर्जे की नागरिकता होने का संत्रास, शरणार्थियों के आवास, भोजन और पुनर्वास संबंधी संकट का सामना आदि का यथार्थ जीवंत विभीषिका विषयक कथा उपन्यासों में भरी पड़ी हैं।

'जुलूस' (1965) में प्रकाशित उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु जी ने शरणार्थी समस्याओं की जिन दिशाओं का उद्घाटन किया गया है, वह अत्यंत मार्मिक है। उपन्यास में पूर्वी पाकिस्तान, अर्थात बांग्लादेश से पलायन होकर शरणार्थी बिहार के पूर्णियां जिले के गोदियर नामक स्थान पर आये। उपन्यास की नायिका

'पवित्रा' जो बांग्लादेश में रहती थी, पश्चिमी पाकिस्तान के अत्याचार और घुटनभरी जिंदगी से परेशान होकर देश छोड़ भारत की ओर विस्थापित होती हैं व कई प्रकार की समस्याओं का सामना करती है।'[18]

'झूठा सच' उपन्यास में भारत–पाकिस्तान विभाजन पर आधारित विस्थापन की त्रासदी को उभारने का प्रयास किया गया है। यशपाल जी का यह उपन्यास दो भागों में प्रकाशित 'वतन और देश' तथा देश का भविष्य के रूप में 1200 पृष्ठों का विस्थापन त्रासदी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा झेलने वाला प्रमुख परिवार रामभुलाया का जो लाहौर की भोलापांधे की सघन गली में रहता था। रामभुलाया के पुत्र जयदेव और पुत्री तारा प्रमुख केंद्र के रूप में रूढ़िवादिता, परंपरा और रीतियों से बंधे होकर भी जीवन की नई प्रगतिशील चेतना को पहचानने व प्राप्त करने के लिये उभरते हैं। देश में स्वतंत्रता के साथ विभाजन की घोषणा सांप्रदायिक दंगे, हिंसा और रक्तपात के भयानक झंझावत के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन करने की प्रक्रिया में अक्रांत हो उठता है। इस उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम के सांप्रदायिक सघर्ष में बेबस औरतें मौत के घाट उतरती हैं। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार- "उपन्यास के माध्यम से यशपाल जी विस्थापित होने वाले लोगों का अल्पसंख्यक जातियों के प्रति बहुसंख्यक जातियों के अमानुषिक अत्याचार और मानवीय बर्बरता के नग्न दृश्य, असहाय नारी के नारीत्व की दुर्दशा, शरणार्थियों के दुःख दर्द भरे काफिले, राजनैतिक स्वार्थों को धर्मान्धता के बहाने सिद्ध करने में आम आदमी का खून बहना तथा मानवता की बलि देना, विस्थापितों की जिजीविषा और संघर्ष आदि रूपों का करुणतम जीवंत कहानी का चित्र प्रस्तुत किया है।'[19]

"भीष्म साहनी द्वारा विभाजन पर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास 'तमस' है जो एक निश्चित देश, काल पर आधारित है। इस उपन्यास में उपन्यासकार कल्पना की नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास की सच्ची घटना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम दौर में देश विभाजन के पूर्व और पश्चात् भीषण सांप्रदायिक दंगों का उल्लेख मिलता है। उपन्यास में लेखक द्वारा लाखों लोगों का बेघर होना और अपने पुरखों की

धरती को छोड़ने का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में नत्थू द्वारा सूअर को मारकर मस्जिद के आगे फेंक देने से शहर में दंगे की स्थिति उत्पन्न हो गयी। एक तरफ 'वन्दे मातरम' की जय-जयकार का नारा लगाया जाता है तो दूसरी ओर पाकिस्तान व 'कायदे आजम जिंदाबाद' के नारे लगाते हुए मस्जिद की ओर बढ़ते हैं तो मस्जिद के आगे मरा हुआ सूअर पाकर बदले में मंदिर के पास गाय का वध कर दिया जाता है। इस घटना के कारण कांग्रेसियों द्वारा कर्फ्यू लगाने की मांग को डिप्टी कमिश्नर द्वारा टाल दिया जाता है जिसके कारण सारा शहर साम्प्रदायिकता की लपटों में जल उठता है। साम्प्रदायिकता से उत्पन्न दंगों की विभीषिका के मार्मिक और यथार्थ अंकन को देखते हुए कृष्णा सोबती ने लिखा है- "तमस जिंदगी की छोटी-बड़ी लड़ाइयों की कहानी नहीं है, यह विभाजन जैसे एतिहासिक घटना का, संघर्ष का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिसमें एक साथ लाखों की कगार में अपने ठिकानों से उखड़े हैं। भीष्म स्वयं भी उस तूफान की चपेट में थे, जिसे बंटवारे का नाम दिया जाता है।"[20]

उपन्यास में कई पात्रों की संपत्ति लूट ली जाती है और वे शरणार्थी कैम्पों में अपने परिजनों का पता करते फिरते हैं। दंगो के पश्चात हजारों की संख्या में लोग अपने-अपने गाँव छोड़कर रावलपिंडी की ओर आते हैं। 'विभाजन के नाम पर जो कत्लेआम हुआ वह व्यक्तियों की असहाय स्थिति को उद्घाटित कर रही थी और विभाजन की त्रासदी को उजागर कर रही थी। विभाजन की इसी त्रासदी को लेकर 'बदी उज्जमा का उपन्यास 'छाको की वापसी' एक मार्मिक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास में भारत-विभाजन से लेकर बांग्लादेश के निर्माण तक के युग का प्रभावी चित्र उदघाटित हैं। भारत विभाजन से पूर्व हिन्दू-मुस्लिम सद्प्रभाव का भाव था। बिहार के गया नामक नगर में उपन्यास का नायक सैय्यद परिवार के खाजे बाबू मुसलामानों के एक मोहल्ले में रहते थे। उस मोहल्ले में दो-चार सैय्यद परिवार को छोड़कर बाकी जुलाहे, कसाई या दर्जी के मकान थे। खाजे बाबू के क्लर्क पिता को खंडन के प्रति बड़प्पन का गर्व था। खाजे बाबू के डाकखाने के अफसर चाचा का पुत्र हबीब ग्रैजूएट था और हबीब की विचारधारा मुस्लिमलीग प्रवृत्ति

की थी। खाजे बाबू के घर के पास ही उनके बचपन का मित्र 'छाको' अपने खानदानी कार्य दर्जी का कार्यभार सम्भालते हुए काम की तलाश में घूमता रहता था। एक दिन नगर में दंगा भड़क गया। लोग बेतहाशा होकर दुकानें धड़ा-धड़ बंद करके भागने लगे थे। छाकों के पिता भी दूकान बंद करके थोड़ी दूर भागे ही थे कि किसी ने पीछे से लाठी से सिर पर ऐसा वार किया कि उन्हें अस्पताल में ही होश आया। दंगों से पूर्व उन्हें बहुत लोगों ने समझाया था कि दूकान हिंदू बहुल इलाके से हटा लें, परंतु वो नहीं माने। इस दंगे में खाजो जी के पिता कहीं फँस गए जिससे परिवार वाले आतंकित हो गए। खाजो के चाचा उन्हें ढूँढने निकले थे। अब्बा की तलाश में उन्होंने घर का कोना-कोना छान मारा था। थाना अस्पताल, बाज़ार-कोई भी जगह उन्होंने नहीं छोड़ी। बहुत से हिंदू-मुसलमान घायल हुए थे और कई मारे भी गए थे। चाचा ने सब लाशें भी देख ली थी। चारों तरफ खौफनाक सन्नाटा था परंतु कुछ समय बाद अब्बा धोती कुरता पहने घर आए। पाकिस्तान का निर्माण इन दंगों का परिणाम ही था, जिसके कारण छोटे अब्बा और हबीब पाकिस्तान जाने के पक्ष में थे, परंतु परिवार के अन्य सदस्य अपनी ज़मीन से कुछ इस तरह का लगाव महसूस करते थे कि दुनिया भर की मुसीबतें झेल सकता है लेकिन अपनी ज़मीन से ख़ुद को अलग नहीं कर सकता। पाकिस्तान जाने के बाद हबीब के खेत आधे हैं व उसके माध्यम से बताते हैं कि पाकिस्तान में उन्हें विस्थापित शरणार्थी माना जाता है। यहाँ पर अक्सर बिहारी व बंगाली मुसलमानों में भेद के कारण दंगे हो जाते हैं।'[21]

पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा पूर्वी पाकिस्तान के बंगाली मुसलमानों को अचानक ज़हरीले साँपों की तरह डंसना शुरू किया और यहीं त्रासदी 'छाको' की रही है जो कलकत्ता में नए सूटों की कटिंग सीखता है परंतु छलावे से उसके मास्टर उसे पाकिस्तान ले जाकर धोखे से हस्ताक्षर करा कर पाकिस्तान का नागरिक बना देता है। परंतु छाको मुसलमान होते हुए भी पाकिस्तान को प्रदेश कहता है क्योंकि उसका लगाव सदैव से उसी मोहल्ले से है जहाँ वह रहता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'छाको' की स्थिति उस पौधे के

जैसी है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोप दिया जाता है। वह अपने सम्प्रदाय के समाज में रहकर भी विस्थापितों जैसा जीवन-यापन करता है।

विभाजन के कारण उत्पन्न शरणार्थी विभीषिका को रचनात्मक मोड़ दिया जाने का प्रयास किया गया है। जबकि यह सत्य था कि अनेक प्रकार की प्रताड़ना को झेलकर विभाजित वतन के लोग नये देश में पनाह पाने के लिए दर-दर भटक कर कई तरह की कठिनाइयों का सामना कर रहे थे। कटी पतंग की भाँति ही इन विस्थापित लोगों को बुरी निगाह से देखा जाता था। शरणार्थी मुट्ठी भर अन्न के लिए तथा सर छुपाने के लिए छनी-छप्पर को भी तरस रहे थे।

बँटवारे की विभीषिका के कारण बहुत से लोगों के लिए 'आज़ादी' भी अभिशाप बन कर रह गयी थी। दंगा, हत्या, बलात्कार, अत्याचार, खून खराब और बेइज्जती के आधार पर देश को बांटकर रक्तपात का इतिहास रचा गया तथा भारत और पाकिस्तान देश के लिए अविस्मरणीय त्रासदी दे कर चला गया, जिसकी दर्द भरी दास्ताँ से हिंदी के कई उपन्यास आज भी अपने पृष्ठों में दर्द से कराह रहे हैं। विस्थापन की त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक सामाजिक समस्या को व्यावहारिक स्तर पर भी देखा जा सकता है, जो व्यक्ति के विचारों में दर्शनीय है। मनुष्य के मन व विचारों की उथल -पुथल को त्रासदी के परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी विस्थापन के कारण झेलना पड़ा था।

'महीप सिंह का उपन्यास 'अभी शेष है' में एक अलग ही प्रकार के विभाजन की त्रासदी को उभारा है। मान सिंह उर्फ़ 'भैया जी' 75 साल के होने वाले हैं किंतु उन्हें बार-बार उन काले दिनों की याद आती रहती है जब देश में विभाजन के समय मारकाट मची हुई थी। उस समय भैया जी भरपूर जवान थे। देश के अनेक भागों में हिंदुओं-मुसलमानों के बीच भड़के दंगों के समाचार रेडियो पर सुनते थे। उन्हें सरहदी सूबे में कुछ स्थानों पर पठान कबायलियों ने कोलकाता के हिंदुओं पर हमले किए थे जिनमें सैकड़ों मारे गए थे किंतु उनके बड़े भाई सदैव ढाढस देते थे कि धीरे-धीरे समय के साथ सब ठीक हो जाएगा और जब राज

पलटता है तो ऐसा ही होता है। पाकिस्तान से आए न जाने कितने ही परिवारों की यही व्यथा है कि वह उन स्मृतियों के बोझ को धोते चले आए हैं। वह नई पीढ़ी से अपने यादों को बांटना चाहते हैं किंतु नई पीढ़ी का अपना जीवन और अपना आकार है, उनके पास इन सब को सुनने का धैर्य कहां है। उपन्यास में भैया जी स्मृतियों से मुक्त नहीं हो पाते हैं। अपनी जन्मभूमि में बिताए स्वर्णिम अतीत का मोह है तो कभी छूट जाने की टीस है।'[22]

पूर्वी पाकिस्तान अविभाज्य भारत का पूर्वी बंगाल था जो मुस्लिम बहुल क्षेत्र था। बांग्लादेश भी एक प्रकार के सांप्रदायिक दंगों के कारण ही संभव हुआ। पूर्वी पाकिस्तान अखंड भारत का पूर्वी बंगाल भी मुस्लिम बहुल क्षेत्र था, किंतु अपनी धार्मिक कट्टरता में पाकिस्तानी सरकार वहां की बंग भाषा और बंग संस्कृति को पूरी तरह समाप्त कर उर्दू और इस्लामी संस्कृति को उन पर थोप रही थी। जनरल अयूब खान के सरकार में आते ही 1958 ई. पूर्वी बंगाल का इस्लामीकरण और तीव्र गति से होता चला गया। फिर उसके बाद याहिया खान की सरकार आई। उनके समय में बंग भाषियों पर अत्याचारों का कहर और भी बुरी तरह बरपाया गया। धीरे-धीरे वहां जनाक्रोश बढ़ता गया, उसी की चरम सीमा बांग्लादेश की निर्मित्ति के रूप में हुई।

बांग्लादेश की मुक्ति वाहिनी सेना की संघर्ष की कहानी या पूर्वी बंगाल में पाकिस्तानी सरकार और फौज द्वारा किए गए अत्याचारों पर हिंदी उपन्यासों में बहुत अधिक नहीं लिखा गया –एकाध उपन्यास में बांग्लादेश के शरणार्थियों की पश्चिमी बंगाल में बेरोक-टोक आवाजाही और वहां जीविका चलाने आदि का वर्णन मिलता है।

"महुआ माजी अपने 'मैं बोरिशाइल्ला' उपन्यास में बांग्लादेश की निर्मिति के पूरे इतिहास और मानव भूगोल में गृह प्रवेश करती है। गहन शोध और विभिन्न व्यक्तियों से साक्षात्कार कर उन्होंने उपन्यास की आधार सामग्री जुटा कर उसे बहुत प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है। कथा के केंद्र में पूर्वी बंगाल का

बोल साल शहर है जहां के निवासी को आंचलिक भाषा में बोल ही साहिला कहा जाता है। यह उपन्यास बांग्लादेश की मुक्तिगाथा पर केन्द्रित है। महुआ माझी उपन्यास के प्राक्कथन में कहती हैं –जिस तरह बिहार के लोग बिहारी तथा भारत के लोग भारतीय कहे जाते हैं, उसी प्रकार बोरिशाल के लोगों को बोरिशाइल्ला कहा जाता है। उपन्यास का मूल पात्र केंटो है जो बोरिशाल में रहता है इसलिए वह कहता है कि मै बोरिशाइल्ला। कथा नायक बताता है कि किस प्रकार पाकिस्तान बनने के सात महीने बाद से ही पूर्वी बंगाल में 1948 ई. के मार्च महीने में जिन्ना साहब के ढाका विश्वविद्यालय में आने पर छात्रों और बुद्धिजीवियों ने स्पष्ट कर दिया था कि हमें अपनी भाषा, अपने साहित्य, संस्कृति पर अत्यंत गर्व है। इस विषय पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं सहेंगे। पूर्वी बंगाल के प्रत्येक निवासी हिंदू मुस्लिम में कूट-कूट कर भरी राष्ट्रीय चेतना से बांग्लादेश अस्तित्व में आया। उपन्यास का पुरवा कहे कि आधे से अधिक भाग की समस्या पर केंद्रित है कि किस प्रकार 1947 में वहां हिंदुओं के साथ अत्याचार किया गया, किस प्रकार वहां से हिंदुओं को खदेड़ा गया। 5 से 10 दिनों तक चली इस लूटपाट में मारे गए लोग अपना घर बार छोड़कर भारत चले गए। उन्हें शिविरों में रखा गया। फिर भारत सरकार ने उन्हें अलग-अलग भागों में ले जाकर बसाया। इसी प्रकार भारत के उड़ीसा, अंडमान निकोबार, दंडकारण्य रांची, पश्चिमी बंगाल के हावड़ा, ताहिर पुर, कृष्ण नगर आदि जगहों में काफी संख्या में पूर्वी पाकिस्तान के हिंदू शरणार्थी जाकर बस गए।

'उपन्यासकार पाकिस्तान और भारत के प्रमुख राजनीतिक घटनाक्रमों पर दृष्टि डालती हुई आगे बढ़ती है। याहिया खान के शासनकाल और भारत में श्रीनगर में हजरत बल मस्जिद में रखे पैगंबर साहब साहब के बाल गुम होने पाकिस्तान के द्वारा हिंदुस्तान के हवाई जहाज के अपहरण की घटनाओं के पश्चात प्रभाव का आकलन करते हुए कथा को बांग्लादेश में मुक्ति वाहिनी के संघर्ष पर केंद्रित करती है। इस क्रम में वह मुक्ति वाहिनी की संघर्ष यात्रा के कितने ही अनजाने पक्षों पर प्रकाश डालती है। यथा 17 अप्रैल की सुबह कुष्टिया जिले के मेहतपुर महकमा के बैद्यनाथ ताला गांव में 100 बीघा जमीन पर फैले आम के बगीचे

में 2000 लोगों की भीड़ जुटना और प्रजातंत्र बांग्लादेश के जन्म की घोषणा की दुर्दशा के रूप में दर्शन कोलकाता के 8 नंबर रोड स्थित दो तल्ला मकान में प्रवासी बांग्लादेश सरकार का दफ्तर आदि। 13 से 14 दिसंबर 1971 की रात में मुक्ति वाहिनी और भारतीय सेना वाहिनी का संयुक्त रुप से ढाका बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण आदि के बड़े घटना क्रम बनाते हैं।'[23]

दरअसल स्वतंत्रता के दौरान विभाजन का दर्द भी सामने आया और अमानवीय घटनाओं की तस्वीर हिंदी साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से बड़े मार्मिक ढंग से उकेरा है। साहित्यकारों ने तत्कालीन राजनीतिक यथार्थ भी अभिव्यक्त किया है। धर्म की कट्टरता इंसान को किस प्रकार आदमखोर बना देती है, इस अमानवीय संवेदना की सच्ची और कड़वी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। भारत विभाजन संबंधी अब तक जितने भी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, उनमें विभाजन के विभिन्न आयामों की अभिव्यक्ति है। भारत ने जिस दर्द को सहा है उसे देश के कोने-कोने तक पहुँचाने का कार्य हिंदी उपन्यास साहित्य का अमूल्य योगदान है।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विस्थापन की त्रासदी

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास विस्थापन की पीड़ा के सन्दर्भ में विकसित नई मानसिकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। अलका जी के उपन्यास में शरणार्थियों की समस्याओं को, उनकी मनोदशा को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है। जनता की अदला-बदली से समाज में नई चेतना का विकास तथा जीवन व्यापार का अपनी समग्रता के साथ उदघाटन हुआ है। हिंदी उपन्यास के विकास-क्रम में 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास एक ऐसा महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो सदियों तक आने वाली पीढ़ी को हिन्दुओं के शवों पर खड़ी की गयी। पाकिस्तान की भव्य इमारत का दर्शन करा कर पूर्वी पाकिस्तान को आंसू बहाने के लिए मजबूर करता है। उपन्यास में एक ओर विभाजन के केंद्र में कार्य करने वाली राजनीति को दर्शाती है तो दूसरी ओर के स्वरूप को भी उभारा गया है जो देश में सांप्रदायिक दंगे और

हिंसक वातावरण को जन्म देती है। यह बांग्लादेश की आजादी की लड़ाई के दौरान मुक्तिवाहिनी आन्दोलन को भड़काती है। अलका सरावगी का यह उपन्यास विभाजन की राजनीति का तीव्र विरोध करता है और यह स्पष्ट रूप से कहता है कि देश की जनता विभाजन को किसी भी अर्थ में स्वीकार नहीं करती है। विभाजन की यह स्वीकृति कांग्रेस और मुस्लिम लीग की उच्च स्तरीय बैठकों तक ही सीमित रह गयी है, परन्तु इस स्वीकृति का सबसे बड़ा मूल्य देश की जनता को चुकाना पड़ गया।

बांग्ला देश द्वारा पश्चिमी पाकिस्तान के विरोध में अहिंसात्मक आन्दोलन का आरम्भ किया गया जिसके कारण आन्दोलन से जुड़े कई बड़े–बड़े नेता जेल भी जाते हैं। इस संघर्ष को बढ़ावा देने हेतु प्रतिदिन अहिंसात्मक जुलूस भी निकाला जाता है। इस उपन्यास में अनिल मुखर्जी, गोपाल बाबू, डॉ. कासिम शाह आदि अन्य नाम हैं, जो इन संघर्षों की लड़ाई में शामिल है। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात यह अनुभव किया जा सकता है कि अपना हाथ-बाजार, घर, भाषा को छोड़ना कितना तकलीफ देय होता है। अलका जी ने सर्वहारा वर्ग की तह में जाकर उसकी मनः स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है कि 'सर्वहारा' अपनी गरीबी को छुपाकर रखता है ताकि वह इज्जत से जीवन जी सके।

पलायन का दर्द इतना खौफनाक होता है कि इसकी कल्पना मात्र से ही हमारे मन में अनेक मार्मिक विचित्र बिंब प्रस्तुत होते हैं। अमीरों के लिए उसके सम्मानित नाम को खोना, संपति का लूटना आदि जैसे स्वयं की आत्मा को खोना है। दूसरी ओर गरीबों के लिए सबसे बड़ा दर्द उनके आस-पड़ोस को खोना है, जो अक्सर विपरीत परिस्थितियों में सुख-दुःख के भागी हुआ करते थे। उपन्यास में श्यामा धोबी के पिता की चिंता थी कि किसके कपड़े धोयेंगे वहां ? हमारा घर-द्वार, हमारी नदी, हमारा धोबी घाट छोड़कर हम कहाँ जायेंगे ? पलायन की लम्बी कहानी रिफ्यूजियों का लम्बा कारवां रहा है। उनके लिए 'रिलीफ एंड रिहैबिलिटेशन डिपार्टमेंट' शिविर था और यहाँ पर बांग्लादेश से आने वाले रिफ्यूजियों का नाम दर्ज होता था और उन्हें अन्य कहीं स्थान पर भेज दिया जाता था। "1949 के अप्रैल तक पूर्वी पाकिस्तान से लगभग

19 लाख शरणार्थी आ चुके थे, भारत का कोलकाता शहर कितना बोझ उठाता। भारत सरकार ने इन्हें बचाने के लिए पूर्वोत्तर के राज्यों के अलावा अंडमान, बिहार, उड़ीसा और छतीसगढ़ के दण्डकारण्य में 1957-1958 ई. में दण्डकारण्य प्रोजेक्ट को शुरू किया। इस प्रोजेक्ट का मूल उद्देश्य बांग्लादेश से आये गरीब हिन्दुओं और दलित शरणार्थियों को बसाने के लिए था। इन शरणार्थियों को वोट देने का अधिकार तथा राशन कार्ड जैसी आदि सुविधायें दी गयी, परन्तु कुछ लोग आज भी नागरिकता से वंचित हैं।"[7]

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में कुलभूषण ने देखा कि रेल में प्रायः शूद्र जाति के लोग थे– जिसमें किसान, मजदूर, नाई-कुम्हार छोटे दूकानदार आदि शामिल हुए थे। यह उपन्यास पूर्वी पाकिस्तान में ही नहीं, बल्कि भारत में भी फैली साम्प्रदायिकता का चित्रण करता है। रेल के रायपुर तक पहुँचने पर, पूरी के रास्ते में लूटपाट, पेट में छुरा मारने से खून के फव्वारे छोड़ते लोग, बलात्कार की जाती औरतें, उठाकर ले गयी लड़कियां और औरतें, मारकर नदी में फेंके गए बच्चे आदि का चित्र खींचा गया है।

यह उपन्यास अमानवीयता के यथार्थ को उभारता है। पूर्वी पकिस्तान का पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होने के संघर्ष के दौरान कई लोग अपने-अपने घरों से बेघर हो गए। वे सीमा को पार कर भारत में प्रवेश करने लगे थे। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा रिफ्यूजियों के लिए रहत शिविरों की व्यवस्था की गयी थी, परन्तु शरणार्थियों की सुविधा हेतु लगाये गए राहत शिविरों का भी कुछ भ्रष्टों द्वारा दुरुपयोग किया जाने लगा। उपन्यास में रिफ्यूजी कैंप में चाटुकारिता के द्वारा ठगने वाले शरद नस्कर जैसे वाले लोग शरणार्थियों की मजबूरी का फायदा उठाकर उन्हें ठगकर अमीर हो गए थे। इसमें दिखाया गया है कि लोगों ने थोड़े से खाने के लिए क्या-क्या नहीं किया। "बाबू तुम देख ही रहे हो मेरी बेटी ललिता 14 साल की हो गयी है। इधर उधर खाने का जुगाड़ करती फिरती है। जहाँ भूख को मिटाने हेतु देह तक को बेचा जाता है।"[8] उन्हीं कैंपों में बलवान सिंह जैसे लोग भी हैं जो कहते हैं- "क्या लौंडे यही माल लाता रहेगा ? दूसरे माल का धंधा भी कर। वहां छोकरियाँ भी बहुत हैं। एक दो ले आ 10 रुपये की बक्शीश दूंगा।"[9] 700

नदियों वाले देश पूर्वी बंगाल के प्रत्येक जन के पास अवश्य ही एक नदी रही हो जो तत्कालीन परिस्थितियों पर सब आंसू लिए रो रहे हैं। उपन्यास में बांग्लादेश को आजाद कराने का संघर्ष और जय बंगाल का नारा देते लोग अपने प्राणों तक को न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। इस संघर्ष का व्यापक चित्र इस उपन्यास में मिलता है। इस सशत्र युद्ध का आधार स्त्रियों के देह पर लड़ा जा रहा था।

वहीं दूसरी तरफ अमला श्यामा का प्रेम तथा मल्ली का नामकरण धर्म, जाति के हाशिए पर रखा गया है। 'मोहम्मद इस्लाम' भी एक ऐसा इंसान है जो इंसानियत का नाम दर्ज कर जाता है। कुलभूषण के पास भूलने का बटन है फिर भी वह मालविका की आत्महत्या का अध्याय बंद नहीं कर पाता है। वह टैगोर की उस पंक्ति को समझने का पूर्ण प्रयास करता है जिसे मालविका ने रेखांकित किया था –"गोरा के सामने उसका जीवन एक क्षण में जैसे सपना हो गया। उसकी माँ नहीं, पिता नहीं, देश नहीं, जाति नहीं, नाम नहीं, गोत्र नहीं, देवता नहीं।"[10] इन सब खालीपन के दुखों का उपन्यासकार ने बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है| उपन्यास में पात्र 'कार्तिक बाबू' की मृत्यु पर अधिक भावुक होती है। कामरेड रोशन अली और श्याम के संवाद को असंवेदनशील की तरह दर्शाया है। उपन्यास में अनेक किरदारों के माध्यम से घटनाओं की बारीकी इतिहास का सम्मिश्रण, पारंपरिक उपन्यास शैली से हटकर एक अनोखे तरह की शिल्प आदि को समेटती हुई इतिहास में कुलभूषण श्यामा मल्ली आदि जैसे किरदारों को दर्ज कराती हैं। उपन्यास की मुख्य विशेषता है कि पूरे उपन्यास में अलका सरावगी जी ने कहीं भी हिन्दू-मुस्लिम नहीं होने दिया। उपन्यास की पूरी शैली ही निष्पक्ष है।

अलका सरावगी जी उपन्यास में कई शाश्वत सवालों को मार्मिक ढंग से रेखांकित करती हैं और साथ ही उसका समाधान भी बताती हैं। कथावस्तु के चयन, भाषा और शिल्प के लिहाज वे से बहुत ही समर्थ रचनाकार हैं। इनके पास अपनी एक अलग ही शैली है जो कहानी से कहानियां निकालकर लाने की क्षमता रखती हैं। इनकी रचनाओं में कहानियां एक परत से दूसरे परत को जोड़कर नई कहानी को रचती हैं।

विजय बहादुर सिंह ने कहा है- "आपके यहां निराला की कविताओं की तरह कई तरह की अर्थभंगिमाएँ हैं जो बहुरंगी पृष्ठों से बढ़कर एक ऐसे कथा चौपाल पर आती हैं जहां कहानी और जिंदगी के बीच की सीमा के एकरस उठती है। सरावगी जी के उपन्यास की कहानी इतनी रोचक व यथार्थवादी लगती है, यह हमारे समक्ष किसी फिल्म की तरह कुलभूषण की जीवन यात्रा चल रही हो। यह वर्तमान और अतीत के बीच जीवन और समाज की संपूर्णता को देखने में सफल उपन्यास है।"[11]

अलका सरावगी के उपन्यास साहित्य में विस्थापन संबंधी जिस दृष्टि का परिचय मिलता है वह भारत-पाकिस्तान विभाजन से हुई विसंगतियों का परिणाम है। मनुष्य जिसे सम्पूर्ण सृष्टि का आधार मानता है, जो निरंतर एक धुरी के समान घूमता रहता है, वह समाज के केंद्र में न होकर एक कल्पना बन जाता है। एक मात्र जमीन का विभाजन लोगों से उसकी अहमियत छीनना शुरू कर देता है।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारत-विभाजन की ऐतिहासिक त्रासदी को उन्हीं रचनाकारों के साहित्य में अनुभव करते हैं जो पाकिस्तान से पंजाब आये थे। यह स्वाभाविक है कि उन रचनाकारों का भूगोल पश्चिमी पाकिस्तान, पंजाब और उसके आस-पास का क्षेत्र हो। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पाकिस्तान का परिदृश्य अब तक हिंदी साहित्य में अछूता था, इस पक्ष से यदि देखा जाये तो अलका सरावगी द्वारा रचित 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास हिंदी साहित्य के एक बड़े अभाव को पूर्ण करने वाला उपन्यास है।

अलका सरावगी जी ने अपनी विचारधारा के अंतर्गत सामाजिक विचार से समाज की उस दुर्दशा को उजागर किया जिसमें आजादी के समय नोआखली के दंगे, तीन साल बाद बारीसाल के दंगे और 17 साल बाद 1964 में कश्मीर के हजरतबल से मोहम्मद साहब की दाढ़ी के बाल के चोरी हो जाने के बाद भड़के दंगों के साथ-साथ मुक्तिवाहिनी के संघर्ष के स्वरूप को उजागर किया है। नई सामाजिक स्थिति और परंपरागत नैतिक मान्यताओं के बीच विस्थापन के अंतर्द्वंद का आभास लेखन में देखा जा सकता है, जो विस्थापित व्यक्तियों की छटपटाहट का सहज और ईमानदार दस्तावेज है। अलका जी के साहित्य में

विस्थापन की त्रासदी उनकी वैचारिकता की गति को प्रवाह देता है । देश विभाजन के बाद पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में चल रहे विवाद के कारण देश के अन्य जनों को कई प्रकार की यातनाएं झेलनी पड़ती हैं तथा इसके कुत्सित परिणाम के प्रभाव से लाखों-लाख हिन्दू-मुसलमान बर्बाद हो गए।

अलका सरावगी के लेखन में पूरा परिदृश्य सूक्ष्मता से बना हुआ प्रतीत होता है। कथा का प्रवाह कहीं-कहीं भटकता और अटकता है, परंतु यह अनुभव बना रहता है कि हम जो पढ़ रहे हैं, वह मूल्यवान है। यह उपन्यास समय के उस काल खंड में अवतरित/उपस्थित हुआ है जब भारतीय उपमहाद्वीप में साम्प्रदायिकता अपने चरम स्तर को छूती हुई प्रतीत हो रही है और भारत के भीतर भी नागरिकता को पुन: परिभाषित करने के प्रश्न पर समाज दो भागों में बाँटा हुआ महसूस हो रहा है। एक तरफ़ इसे पुन: परिभाषित करने की माँग जोर पकड़ रही है और सरकार भी इसके पक्ष में काम करती हुई प्रतीत हो रही है, तो दूसरी तरफ़ इसके ख़िलाफ लोग धरना और प्रदर्शन कर रहे हैं।

'उपन्यास कोलकाता शहर से प्रारम्भ होता है। दरअसल बांग्लादेश के कुष्टिया जिले की जहाँ से पहले 1947 में फिर 1971 ई. में हिंदू परिवार पलायन कर के कोलकाता आते हैं और यह बहुत ही संवेदनशील दृष्टि से विभाजन और विस्थापन से जुड़े सांस्कृतिक, सामाजिक, और आर्थिक/राजनैतिक पहलुओं को उद्घाटित करना है।'[12] इसमें बँटवारा राजनैतिक धरातल से शुरू हो कर विभाजन का रूप लेते हुए परिवार के भीतर के अंतर्द्वंद एवं अलगाव (बँटवारे) की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करता है। उपन्यास का मुख्य-नायक कूलभषण का परिवार एक व्यापारी परिवार था जो दो पीढ़ियों से कुष्टिया में रह रहा था और मारवाड़ियों में काफ़ी सम्मानित परिवारों में गिना जाता था, लेकिन 1947 के भारत विभाजन के पहले से ही पूर्वी पाकिस्तान (कालांतर में बांग्लादेश) के हालात साम्प्रदायिक रूप से बिगड़ने लगे थे । पूर्वी पाकिस्तान के बनने के बाद तो हालत और भी गंभीर हो गए। लोगों को खासकर ग़ैर-मुस्लिमों का अपने घर-बार छोड़ कर कोलकाता/कलकत्ता और उसके आसपास के क्षेत्र में पलायन शुरू हो गया था। बिगड़ते

हालात को देखते हुए कूलभूषण के पिता उसके दोनों बड़े भाइयों को परिवार के साथ कलकत्ता भेज देते हैं। अब कुष्टिया में सिर्फ़ कूलभूषण अपने पिता के साथ रह जाता है। उसके पिता भी पलायन करना चाह रहे थे, लेकिन अपने मकान/सम्पत्ति के उचित मूल्य मिलने तक रुकना चाहते थे और इस आशा में कूलभूषण को अपने पिता के साथ कुष्टिया में ही कई वर्षों तक रहना पड़ जाता है। अंत में जब 1971 के युद्ध और बांग्लादेश के निर्माण के पूर्व हालात और भी बिगड़ जाते हैं तो दोनों बाप-बेटे को सब कुछ छोड़ कर या यूँ कहें कि सब कुछ लुटवा कर पैदल ही कलकत्ता वापस आना पड़ा। इस प्रकार जब वह शरणार्थी के रूप में कलकत्ता आता है तो अपने हीं परिवार में शरणार्थी हो जाता है। अपने ही परिवार वालों के द्वारा उसके ऊपर चोरी का इल्ज़ाम लगाया जाता है, वह उपेक्षा का शिकार होता है और अपने ही परिवार में नौकरों सा व्यवहार होता है। लेकिन साथ ही उसे परिवार के कुछ सदस्यों की सहानुभूति भी मिलती है, जो आगे चल कर उसकी बुरे वक़्त में मदद भी करते हैं।

कुष्टिया में कूलभूषण 'कूलभूषण बाबू' था और व्यापार व सौदे के मामले में उसका कोई जोड़ नहीं था। इलाके में उसकी होशियारी की चर्चा थी, वहीं 'कूलभूषण बाबू' कलकत्ते में हर तरफ असफल साबित हो रहा था। लोग उसे निरा मूर्ख, बेवकूफ और कमअक़्ल समझने लगे थे। वह इन विषम परिस्थितियों में हर एक काम को करता है चाहे वह बस में कंडकटरी ही क्यूँ ना हो। लेकिन परिवार के लोगों के दुतकारे जाने की वजह से उसे यह काम भी छोड़ना पड़ता है। निरंतर हो रहे अपमान और अवहेलना से तंग आ कर अंततः वह घर छोड़ कर शहर के दूसरे छोर पर एक बंगाली मोहल्ले में एक कमरे के छोटे से मकान में रहने लगता है। यहाँ तक कि वह अपनी वास्तविक पहचान छुपा कर 'गोपाल चंद्र दास' बन जाता है। जैन परिवार से होते हुए भी एक बंगाली माँस, मछली खाने वाली लड़की 'रीमा' से विवाह करता है और सफल वैवाहिक जीवन-यापन करता है, परन्तु वह जीवन के द्वन्द के बीच फँसा हुआ है क्योंकि उसकी सामाजिक सक्रियता अलग तरह की है और उसका जीवन उससे बिलकुल ही भिन्न है। दो पहचानों के बीच उसकी

ज़िंदगी बहुत सारी विडम्बनाओं से गुज़रती है। यह यथार्थ को दर्शाता है जो सचेतना से जोड़ने वाली सच्चाई को भी उभारता है।

कूलभूषण के मित्र श्यामा धोबी ने जिस मानवता को उभारा है वह आज के परिप्रेक्ष्य में भी बड़ी कहानियों से स्वीकारा जाता है। श्यामा धोबी को एक दिन पता चलता है कि वह न हिंदू है, न मुसलमान उसे कुष्टिया के लालन फ़क़ीर ने पिता के हाथ सौंपा है। उस दिन से वह स्वयं को कठोर बनाता है और देश की सेवा में अपना पूर्ण योगदान देता है। वह बांग्लादेश के दंगों में मारे गए एक मुस्लिम दोस्त अली की गर्भवती पत्नी को अपने घर में सम्मानपूर्वक रखता है। उसकी बेटी को अपना नाम देकर उपन्यास में अपनी गरिमा बढ़ायी है। कुलभूषण जैन के पास उसके मित्र श्यामा धोबी द्वारा दिया गया वह बटन है जिससे वह अपने सभी दुःख दर्द, तकलीफ को उसे दबाकर भूल जाता है।

कुलभूषण अपने ही परिवार के द्वारा शिकस्त खाते हुए रहता है और मुसीबतों से जूझना उसके जीवन के प्रति जीजिविषा को दिखाता है। वह एक बड़े घर का सदस्य है लेकिन इसके बावजूद भी उसके जीवन में छोटी-छोटी चीजों के लिए तरसना, उसका रंग काला होने के कारण परिवार का उसके प्रति उपेक्षा भाव मन को उद्वेलित करता है। अलका सरवगी जी की दृष्टि जिस तरह बाँटने वाले यथार्थ को दर्शाती है, उतनी ही सचेतना से जोड़ने वाली सच्चाइयों को भी उभारती है। वे कुलभूषण जैन के जरिये बंगाल के विभाजन और विस्थापन का अंकन करती हैं। उपन्यास में जमीन का विस्थापन तो है ही वहीं दूसरी ओर रिश्तों से भी खारिज कर देने वाली स्थिति का भी अंकन किया गया है। इसमें मनुष्य के स्वभाव का दर्शन होता है। कुलभूषण अपनी जड़ों से विस्थापित होता है, फिर भी वह अपने मूल से सदैव जुड़ा रहता है। इनकी एक विशेष शैली है जिससे वह अलग ही तरह की कहानियां निकालकर लाती हैं और इन कहानियों के माध्यम से महसूस किया जा सकता है कि उनमें एक परत दूसरी परत से जुड़कर नई कहानी रची जाती है।

कुलभूषण के भीतर ऐसी चाहत के किले हैं कि वह दो पहचानों के बीच अपने आप को टूटा हुआ पाता है। वह बस में कंडक्टर का काम करता है। जब यह बात उसके परिवार वालों को पता चली तो वह उनके द्वारा दुत्कारा जाता है। इन्हीं विसंगतियों के बीच वह तड़पता है। उपन्यास में पारिवारिक त्रिकोण में कुलभूषण, प्रशांत और मालविका हैं। तीनों अलग-अलग जाति और धर्म के हैं, परंतु वह संस्कृति में एक हो जाते हैं। मालविका जैविक रूप से ना तो श्यामा की पुत्री है, ना ही कुलभूषण की पुत्री है, परंतु उसकी आत्महत्या एक रहस्य है। इसका सही कारण कुलभूषण नहीं जान पाता है। अलका जी एक इंटरव्यू में कहती हैं कि- 'मुझे लगता है कि मालविका प्रशांत को प्रेम करती थी, वह किसी और से शादी कर एक और विस्थापन के लिए तैयार नहीं थी। मालविका बचपन से ही विस्थापन देख रही थी, इसलिए शायद एक नये सिरे से होने वाले विस्थापन को वह किसी भी तरह स्वीकार नहीं करना चाहती थी। उनके लिए दोबारा जमाई हुई जड़ों से दुर्घटना तकलीफदेह है कि वह जीवन की कल्पना ही नहीं कर पाती है। वह पारिवारिक विस्थापन की एक और त्रासदी का अनुभव नहीं चाहती है।'[13]

अलका जी की इस किताब 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' का प्रथम पृष्ठ हमें ठहरकर आखिरी पृष्ठ तक पढ़ने को मजबूर करता है- "डेढ़ चप्पल पहनकर यह काला, लम्बा दुबला शख्स कौन है ? हर बात पर वह इतना खुश कैसे दिखता है ? उसे भूलने का बटन देने वाला श्यामा धोबी कहाँ छूट गया ? कुलभूषण को कुरेंदेंगे तो इतिहास का विस्फोट होगा और कथा-गल्प- आपबीती जगबीती के तार निकलते जायेंगे। कुलभूषण पिछली आधी सदी से उजड़ा हुआ है। देश, घर, नाम, जाति, गोत्र तक छूट गया फिर भी अर्ज कर रहा है माँ-बाप का दिया कुलभूषण जैन नाम दर्ज कीजिये। इस किरदार के आसपास के संसार में किसी भी प्रकार का कोई दरवाजा-ताला नही हैं। लेकिन फिर भी इसकी तिजोरियों का रहस्य दफ़न है। एक लाईन ऑफ़ कण्ट्रोल, दो देश, तीन भाषाएँ, पांच से अधिक दशक, कुलभूषण जैन ने सब देखा, जिया और समझा

है। जिन त्रासदियों को हम इतिहास का गुजरा समय मान लेते हैं, वे वर्तमान तक आकर कैसे बेखबरी से हमारे इर्द गिर्द भटकती रहती हैं।"[14]

यह उपन्यास एक ऐसे अचूक इतिहास पर दृष्टि डालता है जो पूर्वी बंगाल से आजादी से चलता गया लगातार विस्थापित भारत में शरणार्थियों को बंगाल से बाहर राम-सीता के निर्वासन की भांति दंडकवन में बसाने की कोशिश सारी कथाएं एक मार्मिक महाख्यान रचती हैं। इसके भीतर एक मानवीय आशय है जो किरदार की निरीहता और प्रौढ़ता को पाठक के मन को शंकित कर देता है। इतिहास, भूगोल, संस्कृति, साम्प्रदायिकता, जाति व्यवस्था, समाज और इन सबके बीच कैसे लोगों की बेदखलियों से परिचय यह कथा किस्सागोई की लचक के साथ करवाएगी। अलका सरावगी जी जिन्दा धड़कते भूगोल का सृजन वाली लेखिका के रूप में उभरती हैं। उनका उपन्यास अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में ही जाना जाता है। उन्होंने अपने किरदारों के माध्यम से ठोस अवस्थिति का बोध कराया है, जिसका पाठकों के स्नायु तंत्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिन्दू और मुसलमान जिस प्रकार खुद को परिवर्तित करते हैं, दंगों में जिस प्रकार उन्होंने खून बहाया है, उसका वास्तविक चित्रण किया गया है। उपन्यास में कुलभूषण जैन को केन्द्रीय पात्र के रूप में रखा गया है, जिसके माध्यम से बांग्लादेश के कुष्टिया जिले से कोलकाता तक और आगे के पलायन के दर्द को दर्शाया गया है।

'14 अगस्त 1947 ई. को दुनिया के नक्शे में पाकिस्तान का उदय हुआ जिसकी विडंबना यह थी कि उसका एक हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान 1400 किलोमीटर दूर था। पूर्वी पाकिस्तान की विशेषता थी कि यहाँ बांग्ला संस्कृति की भाषा थी, परन्तु आगे चलकर यहाँ उर्दू को राष्ट्रीय भाषा के रूप में थोपने का प्रयास हुआ। बांग्ला भाषा आंदोलन 1952 में घटित एक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आंदोलन था जिसे भाषा आन्दोलन भी कहते हैं।'[15] इस आन्दोलन की मांग थी कि बांग्ला भाषा को पाकिस्तान की एक आधिकारिक भाषा की मान्यता दी जाए तथा इसका उपयोग सरकारी कामकाज में, शिक्षा के माध्यम के

रूप में, संचार माध्यमों में आदि पर जारी रखा जाये। इसके अलावा बांग्ला भाषा को बांग्ला लिपि में ही लिखना जारी रखा जाये। अंततः यह आन्दोलन बांग्लादेश मुक्ति संग्राम में बदल गया।

'1971 में भारत पाकिस्तान की आधार शिला पर बांग्लादेश मुक्त हुआ। बांग्लादेश में 21 फरवरी को 'भाषा आन्दोलन दिवस' के रूप में याद किया जाता है। भारत-पाकिस्तान के विभाजन पर खूब साहित्य लिखा गया है, परन्तु पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापन पर केन्द्रित कम ही लिखा गया है। 1971 के युद्ध को लगभग 50 वर्ष हो गए है, फिर भी अलका सरावगी का यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जो सदैव याद किया जायेगा।'[16] यह कहानी एक सिरे से शुरू होकर दूसरी तह को पकड़ती है जिसमें पत्रकार और कुलभूषण के वार्ता के बीच कहती चली जाती है। शुरूआत में कुलभूषण 'आत्मकथा' नामक नाटक के पोस्टर पर निगाहें डालता है और ठहर जाता है। नाटक के नायक के रूप में कुलभूषण ही है और अपने वजूद को बचाने के संघर्ष में लगातार जुड़ा हुआ है। उपन्यास के नायक कुलभूषण जैन की जिंदगी के माध्यम से पूर्वी बंगाल की आजादी के साथ शुरू हुए विस्थापन और शरणार्थियों के निर्वासन की कहानी को राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के बीच पिसते हुए मनुष्यों का परिचय कराया गया है। कुलभूषण जैन की मुस्कुराहट उसके चेहरे पर जादू की छड़ी फेर देती है। उसे भी इस बात का आभास था। बचपन से ही स्वयं को शीशे में देखकर वह मायूस होता था। वह अपने सभी भाई-बहनों में सबसे अधिक कुरूप था। उसका रंग मटमैला और ऊपर से उसके नाक-नक्श भी कहीं चिपके तो कहीं फूले हुए थे। जाने किस दोष का ऊपर वाले ने उसे यह दंड दिया था या फिर उसके साथ मजाक किया था। जिसके कारण वह स्वभाव से क्रोधी होता गया। घर के बाकी सदस्यों से महत्त्व न मिलने पर वह इन सबका बदला माँ से लेता था।

बेहद ही रोचक बात यह है कि कुलभूषण के पास भूलने वाला बटन है जिसके बारे में उसके किशोरावय मित्र श्यामा धोबी ने बताया था- 'अरे कुलभूषण अपने शरीर में ऊपर वाले ने एक ऐसा बटन लगाया है कि बस अपनी उंगली उस पर रखी और तुम सब भूल जाओगे कि लोग तुम्हारे ऊपर कैसे हंसते

हैं। बटन दबाया कि तुम्हारी आत्मा में खुशी की लहर दौड़ने लगेगी। तुम दुखी रहना चाहोगे तो भी नहीं रह पाओगे।' कुलभूषण का मित्र इतना बदसूरत था कि शायद उससे बदसूरत इंसान नहीं हो सकता था। वह तवे की तरह काला और उसका पूरा चेहरा दाग धब्बे व गड्ढों से पटा हुआ था। उसकी आंखों में सफेदी के कारण पता ही नहीं चलता था कि उसकी आंखें भी हैं। कई प्रकार की शारीरिक कुरूपताओं के कारण भी उसे ना जाने क्या खजाना मिला हुआ था कि वह सदैव खुश रहता था।

कुलभूषण बांग्लादेश के कुष्टिया जिले के एक जैन व्यापारी के परिवार का सदस्य था। उसके चार भाई थे। कुष्टिया से लोगों के विस्थापन की कहानी 1947 और 1971 से शुरू हो चुकी थी। उस दौरान कुष्टिया से भी लोग भागकर कोलकाता आते थे। दंगे होने पर कुलभूषण के पिता अन्य भाइयों को कोलकाता भेज देते हैं। कुलभूषण अपने पिता के साथ कई वर्षों तक कुष्टिया में रहा, परंतु जब हालात बद से बदतर हो गये उन्हें भी पलायन करना पड़ा। कुलभूषण सबकुछ गंवाकर कोलकाता आता है, तब वह अपने ही घर में शरणार्थी जैसा हो चुका है।

उपन्यास में लेखिका ने हिंदुओं के विस्थापन या उन पर किसी अत्याचार का वर्णन नहीं, बल्कि देश के साथ-साथ परिवारों के विभाजन के जिम्मेदार पहलुओं की दूरी के बारे में बताया है। कुलभूषण की अपने ही परिवार में उपेक्षा और भूलने वाले बटन की उपस्थिति उसके व्यक्तित्व को कुछ अंजाने रहस्य में परिवर्तित कर देती है। परिवार के द्वारा ही उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है और उससे नौकरों की तरह काम लिया जाता है। घर के प्रत्येक छोटे बड़े सदस्यों के द्वारा अपना शोषण करते हुए देखकर भी कुलभूषण अपनी एक नवीन दुनिया में मस्त है। जो कुलभूषण कुष्टिया का एक कुशल व्यापारी था वह कोलकाता आकर मानो किसी काम का नहीं रह जाता है। वह कई प्रकार का काम करता है परंतु किसी ना किसी वजह से असफल हो जाता है। वह कोलकाता में आकर अपने भाइयों से प्राप्त उपेक्षा के कारण अपने घर से कुछ दूरी पर अपना नाम बदलकर गोपाल चंद्र दास बनकर रहता है और एक बंगाली लड़की जिससे

वह प्रेम करता है उससे विवाह कर लेता है। कुलभूषण अपनी दो पहचान लिए हुए विषम परिस्थितियों को झेलते हुए कभी हार नहीं मानता है। वह अपने परिवार के कुछ सदस्यों द्वारा समर्थन भी पाता है जो समय-समय पर उसकी मदद भी करते हैं।

'कहानी का दूसरा पक्ष कुलभूषण का मित्र श्यामा धोबी को केंद्र में लाता है जिसे किशोरावस्था में यह पता चलता है कि उसके माता-पिता ही उसके अपने नहीं, बल्कि उसे किसी फकीर ने उसके माता-पिता को सौंपा था। इस उपन्यास का नायक श्यामा धोबी तो नहीं कहा जा सकता है परंतु इसकी उपन्यास में भूमिका महत्वपूर्ण है। पूर्वी पाकिस्तान में बढ़ रहे दंगों में मारे गए मुस्लिम दोस्त की गर्भवती पत्नी को सम्मानपूर्वक अपने घर लाता है। उसे पत्नी का दर्जा देकर अपने ही घर में रखता है। वह उसकी बेटी को भी अपनाता है हालांकि बांग्लादेशी आंदोलन के दंगों में अमला और श्यामा दोनों उसकी भेंट चढ़ जाते हैं और उनके मूक आदर्श प्रेम का दुखद अंत होता है। उनकी बेटी का नाम मालविका था जिसका पालन-पोषण भी कुलभूषण ही करता है। कुष्टिया में पाकिस्तानी सेना के अत्याचार से सिर्फ हिंदू वर्ग ही नहीं, बल्कि मुसलमान भी काफी हद तक प्रभावित होते हैं। उपन्यास में पात्र डॉ. कासिम जो पाकिस्तानी सेना के खिलाफ इस लड़ाई में सक्रिय भाग लेते हैं, जिसके कारण उनका भी बुरा असर होता है। डॉ. कासिम पर हुए अत्याचार को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इसमें मानवता को असंख्य बार शर्मसार किया है।

उपन्यास का एक पात्र अनिल मुखर्जी है जो कुष्टिया के संभ्रांत नागरिक हैं जिन्होंने सदैव दूसरों की मदद की है। उनके ही द्वारा ना जाने कितनी ही परिवार की रोजी-रोटी चलती है। उपन्यास में देखा जाता है कि एक विश्वास से भरे वैवाहिक समारोह में उनका अपना परिवार भी कत्ल लूटपाट और बलात्कार का शिकार हो जाता है। कुलभूषण अनिल मुखर्जी को ढूंढते ढूंढते दंडकारण्य तक चला गया तथा उसके दंडकारण्य तक पहुंचने की यात्रा बेहद ही रोचक है। अपनी यात्रा के दौरान वह कई ऐसे लोगों से भी मिलता है जो अपना सब कुछ खोकर भी पुनर्वास का सपना संजो कर जी रहे हैं। जिस पत्रकार को कुलभूषण अपनी

कथा सुना रहा था उसके बारे में वह सोचता है कि यह पत्रकार बहुत ही चालाक किस्म का प्राणी है जिसने उससे सारी बातें पूछ ली हैं। कौन जाने उसकी मंशा क्या है। इस विषय में कुलभूषण सदैव चिंता करता है और कहता है कि-कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिएगा।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास का एक संस्था द्वारा बनाई गई एक फिल्म में दिखाया गया है। कुलभूषण को कुरेदने से साहित्य का विस्फोट होगा और कथा कल्प आपबीती अपने आप निकल जाएंगे। कुलभूषण पिछली आधी सदी से उजड़ा हुआ है। देश, घर, नाम जाति तक उसका छूट गया है। फिर भी वह अर्ज करता है कि मां-बाप का दिया कुलभूषण नाम दर्ज कीजिए एक लाइन आफ कंट्रोल दो देश, तीन भाषाएं, और पाँच से अधिक दशाएं कुलभूषण ने अपने जीवन में देखा। अपने बड़े भाई के बंगले में केयरटेकर की नौकरी करना उसके लिए उतनी ही मजबूरी है जितना अपने मोहल्ले में कुलभूषण की जगह गोपाल चंद्र दास बनकर रहने की है।'[17]

पत्रकार और कुलभूषण के बीच के संवाद कुलभूषण की स्थिति को और स्पष्ट करते हैं-

कुलभूषण- "कौन कहता है नाम में क्या रखा है। पसीना और पसीने की कोलकाता के बस कंडक्टरी के दिनों को याद करता करता हूं तो यही सब याद आता है। अरे हां पुरानी चरमराती बसें, उसकी आवाजें, काला-काला धुआं। रात को जब घर पहुंचता और खांसता तो काले काले बलगम निकलते हैं। काले बाल चिटचिटाते कपड़े, लेकिन काम बुरा नहीं था। परिवार का पेट पाल लेता था और आपको तो पता ही है उन दिनों बेरोजगारी के क्या हालात थे। हर तरफ नारे लगते थे या हर तरफ हड़ताल 'गली-गली में शोर है जीएम शाह चोर', है देखिए मुझे आज भी यह नारा याद है।"[18]

पत्रकार- तो आप भी बेरोजगारी से बचने के लिए कंडक्टर बने हैं ?

कुलभूषण- "नहीं वैसे तो कलकत्ते में रिफ्यूजीयों के लिए कई नौकरियां थी। कलकत्ते में अखबारों में इश्तिहार दिया जाता था रिफ्यूजियों को नौकरी में रखने के लिए लेकिन उन में साफ लिखा होता था घर में बच्चों से पढ़ाने से लेकर सारे काम करने पड़ेंगे।"[19]

पत्रकार- "अच्छा आपने बताया कि दंडकारण्य से लौटने के बाद आप ने सबसे पहले साड़ी प्रिंटिंग कारखाने में काम सीखा था। उसका क्या हुआ ?"[20]

कुलभूषण- "वही हुआ जो मेरे साथ होता आया है 'करे कोई भरे कोई'। कंपनी का मैनेजर एक नंबर का चोर था। प्रिंटिंग के लिए साड़ी के बंडल में से उसने एक बंडल चुराया और इल्जाम मुझ पर लगा दिया। कंपनी ने पुलिस भेजी और मुझे जेल जाना पड़ा। कोर्ट में पेशी हुई तब जाकर मैं कहीं बच सका। मैंने कोर्ट में अंग्रेजी में बयान दिया कि मैं पूर्व बंगाल का धनी घर का काम सीख कर कारखाना खोलने के उद्देश्य से वहां गया था। यह बात सुनकर जज और वकील सब हक्के-बक्के रह गए। मैंने उनसे कहा साहब शक्ल पर मत जाइए यह शक्ल आपकी भारत सरकार की दी हुई है, जिसमें बिना कुछ सोचे-समझे अपने ही लोगों को मारे व लूटे जाने के लिए एक दूसरी सरकार के हाथ में दे दिया।"[21]

उपन्यास पूर्वी बंगाल के हिस्से के ऐसे ही बदनसीब लोगों की गाथा है जो विस्थापन की वेदना के लिए एक शरणार्थी के रूप में आया है। नाम छुपा कर जीना कुलभूषण की नियति है। उसी प्रकार के उसके अस्तित्व को बचाए रखने की इच्छा है। कौन नहीं चाहता कि उसका नाम इतिहास में दर्ज हो, परंतु कभी-कभी इतिहास में दर्ज होने के लिए समय की चक्की में बहुत ही महीन पिस जाना पड़ता है। इतिहास में दर्ज होने के लिए ना खत्म होने वाले संघर्ष में समा जाना पड़ता है। उपन्यास में पात्रों के माध्यम से निजी जीवन की राजनीतिक, सामाजिक सच्चाई उभरकर हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई है जो जीवन अनुभव में परिणत हो रही है। कुलभूषण जैन के व्यक्तित्व की सुलझी-अनसुलझी ऊहापोह बहुत ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत है जो हमें सहजता से उनके साथ जोड़ लेती है। कुलभूषण जैन का मेहनतकश लोगों के प्रति स्नेह का भाव रखने

के कारण उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है तथा लोग उसे पागल समझते हैं। जबकि वह एक अद्भुत व्यक्तित्व का धनी है।

उपन्यास में उद्घाटित कहानियां एक विशेष संप्रदाय के प्रति घनघोर नफरत और सांप्रदायिकता को हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में एक मूल्य की तरह प्रस्तुत किया गया है। आज जब बांग्लादेश को आजाद हुए 50 वर्ष से अधिक का समय हो गया है तो दूसरी तरफ भारत के प्रधानमंत्री के विरोध में बांग्लादेश में प्रदर्शन हो रहे हैं। एन.आर.सी और सी.ए.ए. के कारण दोनों देशों के रिश्ते में उतार-चढ़ाव देखे जा रहे हैं। ऐसे जनविरोधी समय में अलका सरावगी जी अपने उपन्यास के माध्यम से ऐसे पात्रों को जिंदा कर रही हैं जो विभाजन के दौरान पुलिस, सेना, नेताओं की सत्ता-लोलुपता और असामाजिक तत्वों की दरिंदगी ने उन्हें मानवीयता को नष्ट कर ही नहीं रहने दिया गया।

उपन्यास में एक स्थान पर कुलभूषण द्वारा यह बताया जाता है कि जब वे लोग पूर्वी पाकिस्तान से स्वयं मंदिर की मूर्तियां लेकर विस्थापित हुए थे तो किस प्रकार जैनी लोग मूर्ति को सफेद कपड़े में लपेटकर मूर्ति को मरे हुए बच्चे की तरह गोद में लेकर आए थे। इस मूर्ति को लाने में शुभदा नश्तर ने जो अपनी भूमिका निभाई थी, उसकी भरपाई उसकी पुत्री की मदद करके चुकाता है। उपन्यास में कहानी की शुरुआत सन 1947 से शुरू होकर 1971 तक फैली हुई है जो अपने धर्म, भाषा, संस्कृति के प्रति आवाज उठाने को आग्रह करती है। इन सब के साथ ही हिंसक प्रवृत्ति भी शामिल है जिसमें प्रतिशोध भी है। पूर्वी पाकिस्तान की जमीन पर बांग्लादेश की नींव इसी पाकिस्तान के हम ही श्रेष्ठ की भावना के चलते हुई। बंगालियों को चावल खाने, काले पिलपिले लोग समझने वाले पश्चिमी पाकिस्तानी ने इन्हें 'बिंगो' (बांग्लादेशियों को कहे जाने वाले शब्द) कहकर मजाक बनाते थे। सूरज पालीवाल के अनुसार- "यह भी संयोग मात्र नहीं है कि 1946-47 में जिस साम्प्रदायिकता ने देश विभाजन से लेकर सदी की क्रूर हत्याओं और अमानुषिक

घटनाओं को अंजाम दिया था, वह साम्प्रदायिक उबाल का दौर था जिससे मनुष्य जाति का तन मन जल रहा था।"[22]

21 फरवरी 1952 ई. में पूर्वी पाकिस्तान पर जबरन उर्दू लादने के विरोध में पूरे ढाका में जबरदस्त जन आंदोलन हुए थे। पाकिस्तान सरकार द्वारा बंगालियों को शक की नजर से देखा जाने लगा था क्योंकि उन्हें वह सच्चा मुसलमान नहीं मानते थे। वहाँ स्कूलों और मदरसों तक में सुबह की प्रार्थना उर्दू में शुरू करने की घोषणा कर दी गयी थी। पश्चिमी पाकिस्तानियों को कविगुरु रवींद्रनाथ टैगोर से संबंधित होने वाले आयोजनों तथा कार्यक्रमों पर पूर्ण रोक लगा दी थी क्योंकि उनका मानना था कि इस्लाम धर्म में नाचना गाना निषेध है। भाषा संबंधी आंदोलन इतना प्रचंड रूप धारण कर लिया था कि 'राष्ट्र भाषा बांग्ला चाही' पोस्टर लेकर नारा लगाने वाले निर्दोष छात्रों पर पुलिस को गोलियां चलानी पड़ी थी।

इन परिस्थितियों को देखते हुए कुलभूषण सोच में पड़ गया था कि रवींद्रनाथ तो यही के हैं। कुष्टिया से बिल्कुल पास में ही उनकी जमींदारी है और यहीं बैठकर इन्होंने अनेक प्रसिद्ध रचनाएं लिखी हैं जिन पर इन्हें नोबेल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है, क्या पाकिस्तान की हुकूमत द्वारा रवींद्रनाथ की प्रसिद्धि को मिटा देने का प्रयास चल रहा है ?. इसी दौरान बांग्ला भाषी आन्दोलन में पुलिस की गोली से ढाका यूनिवर्सिटी के चार छात्र शहीद हो गए थे। इन छात्रों का स्मारक ढाका यूनिवर्सिटी के मुख्य द्वार के दाहिने ओर ढाका मेडिकल कॉलेज के पास शहीद मीनार नाम से बनाया गया है। उपन्यास में पूर्वी पाकिस्तान में रह रहे मुसलमानों के मध्य संघर्ष चलता रहा है जिनमें बिहारी-बंगाली का झगड़ा अंदर ही अंदर खोखला करता है। कुलभूषण के परिवार के लिए बंगाल के कुष्टिया जैसे छोटे कस्बे के दमनकारी माहौल में रहना और इसी मिट्टी में सांस लेना अत्यंत ही कठिन रहा है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम कुलभूषण जैन से गोपाल चंद्र दास हो जाने में देखते हैं। कुष्टिया की हवाओं में खौफ तथा यहां की नदियों में उबाल था और देखते ही देखते संपूर्ण कुष्टिया की धरती भी सांप्रदायिकता की आग में झुलसने लगी थी जिसका उदाहरण उपन्यास

के पात्र अनिल मुखर्जी के परिवार के साथ हुई त्रासदी में देखते हैं, जिसकी तलाश में कुलभूषण अपना सब कुछ गंवाते हुए दंडकारण्य तक चला जाता है। दंडकारण्य के कैंपों में रहने वाले शरणार्थियों के जीवन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कर उनकी त्रासदी को उभारा गया है। हर सप्ताह टूटे हुए सड़े गेहूं, कंकड़ मिले घटिया चावल और साढ़े आठ रुपये की भीख पर पांच साल से जी रहा हूँ। रमाकांत ने चलते-चलते कहा कि इन लोगों ने भिखारी बना कर छोड़ा है। इसकी जगह जमीन देते तो कुछ इज्जत से जी सकता था।

'दुनिया भर में आज भी ऐसे विस्थापितों के दिल में छोटा सा सपना उठता है कि वह अपनी जन्मभूमि पर लौट जायें। स्वयं कुलभूषण भी कभी कुष्टिया को नहीं भूल पाता है। उपन्यास में दंगों के बहाने मानवीय त्रासदी की कहानी को उद्घाटित किया गया है । स्वतंत्रता के समय नोआखली के दंगे तीन साल बाद बरिसाल के दंगे और सन 1964 में कश्मीर के हजरतबल से मोहम्मद साहब की दाढ़ी के बाल चोरी हो जाने के बाद भड़के दंगों के साथ-साथ मुक्तिवाहिनी संघर्ष की पृष्ठभूमि में उन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितियों को भी प्रस्तुत किया गया है, जिसके कारण ही पूर्वी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में हिंदुओं का पलायन होता है जिसके परिणामस्वरूप अपनी मां को लेकर कुलभूषण को भी कोलकाता की ढाका पट्टी में अपने भाइयों के पास लौटना पड़ा था।'[23]

कुलभूषण के नाम में ही एक मार्मिक विडम्बना छुपी हुई है। अपने कुल के लिए उपस्थित एक कलंक या दाग की तरह है। वह कुल के हाशिए पर फेंका हुआ पात्र है जो भारतीय समाज में एकता का विकलांग होना दर्शाता है। पत्रकार की स्थिति में अपनी पहचान को दर्ज कराना उन लाखों शरणार्थियों के लिए अपने को कहीं पा लेने की मुहिम है। कुलभूषण को डर है कि पत्रकार उसका नाम 'कुलभूषण जैन' न दर्ज करके गोपालचंद्र दास के नाम से न दर्ज कर ले।

विस्थापन के कारण सांस्कृतिक बदलाव भी जुड़ जाता है। भारत में तीव्र गति से औद्योगीकरण का विकास हुआ है जिसका आमजन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है और यह सांस्कृतिक जनसंहार से कम नहीं है।

भारतीय संस्कृति उनकी सामाजिक संस्थाओं द्वारा कायम संबंधों के आधार पर यह जीवंतता बनी रहती है और विस्थापन इसी पारस्परिक बंधन के चिथड़े उड़ा देता है। उपन्यास में डॉ. कासिम जैसे लोग भी हैं जो हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए सदैव खड़े रहते हैं लेकिन एक तरफ बिहारी मुसलमान और दूसरी तरफ पाकिस्तानी मुसलमान तो बंगालियों को कीड़े-मकोड़े से ज्यादा नहीं समझते हैं। इन्हें बंगालियों के इस्लाम से कोई मतलब नहीं था और इस प्रकार के लोग बंगाल में अनेक प्रकार के दंगों को विकराल रूप देते हैं।

सांस्कृतिक क्षरण किसी भी देश की संस्कृति की विरासत को नष्ट करता है तो दूसरी ओर उसे अपनी मूल पहचान से अलग भी करता है। उपन्यास के माध्यम से यह सवाल सदैव बना रहेगा कि क्या हम इंसान बन पाए हैं ? कुलभूषण को ही देखिए जब वह बंगाली मोहल्ले में रहता है तो वहां की परिस्थितियों में ढलने के लिए अपना नाम भी बदल लेता है। बंगाली लड़की से शादी करता है। वह अपने मूल संस्कार में भी बदलाव लाता है। परंतु उसका नाम उसका पीछा नहीं छोड़ता है, तब वह कहता है- 'कुलभूषण नाम दर्ज कीजिए'। पत्रकार कहता है-"भूषण बाबू आपकी जिंदगी यूनिक है क्योंकि आप सिर्फ कुलभूषण जैन ही नहीं गोपाल चंद्र दास भी हैं लेकिन वह पत्रकार से बार-बार कहता है- कुलभूषण जैन ही दर्ज कीजिएगा फिर इतना आग्रह क्यों करते हैं ?"[24]

राष्ट्रीय गौरव को सर्वोपरि रखना हमारा मौलिक कर्तव्य है परंतु अपनी संस्कृति की शुद्धता को बनाए रखना हमारे अस्तित्व की पहचान है। अपने अस्तित्व की रक्षा हिंदू, मुसलमान या बंगालियों द्वारा अपनी संस्कृति भाषा को अपनाना है, ना कि धर्म को राजनीतिक कीचड़ में घसीटना है। आदमी की पहचान इतिहास में कहां है और उसकी कितनी वैधता है, इन प्रश्नों को कुलभूषण खोज रहा है।

उपन्यास में कथा को जीवन की अभिव्यक्ति की नई संज्ञा से प्रस्तुत किया गया है जो कुलभूषण के जीवन की कड़ी है। एक सामान्य आदमी को स्वाभाविक जीवन के समानांतर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। विस्थापन की त्रासदी का चित्रांकन इस प्रकार उपन्यास में दर्शाया गया है।

ईस्ट पाकिस्तान से इंडिया आते जाते कुलभूषण ने कई बार मरी हुई लाशें देखी थीं। एक बार तो जहां से वह लोग नौका पर चल रहे थे, वहीं सीढ़ियों के पास एक लड़की मरी पड़ी थी। किसी ने उस पर कोई कटा हुआ साड़ी का टुकड़ा डाल दिया था। विभाजन में उत्पन्न समस्याओं के निम्न स्तर है। उपन्यास में सम्प्रदायों के मध्य पनपने वाला अविश्वास विभाजन के पहले और बाद में हुआ। साम्प्रदायिक दंगे, निरपराध मनुष्यों की हत्या, संबंध टूटने की पीड़ा, अपनी भूमि से उजड़ने की पीड़ा, विस्थापित रूप में एक नए देश में बसने की अनेकानेक समस्या तथा स्त्रियों की दयनीय स्थिति जैसी अमानवीय समस्याओं को उपन्यास के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

'वास्तव में भारतीय इतिहास में स्त्री को अधीन रखने और शोषण करने के भी धार्मिक, नैतिक, और राजनैतिक मापदंडों को रोंदा गया है। इन कुरीतियों का सबसे ज्यादा शिकार नारी वर्ग ही रहा है। कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए उपन्यास में नारी जीवन की विभिन्न विषमताओं का चित्रण है।"[25]

उपन्यास में माया नस्कर की समस्याओं का कारण पुरुष की कमजोर मानसिकता को दिखाया गया है। शराबी पति कई-कई दिन तक घर नहीं आता। विभाजन के पूर्व उसके पास खानदानी घर था। अब वह रेल के किनारे झुग्गी बना कर रहते हैं। उसकी आठ साल की लड़की बांस बनाती है। वह पति के द्वारा कई बार प्रताड़ित ही होती है फिर भी वह वैयक्तिक स्तर पर जीवन जीती है। विस्थापन की स्थिति में महिलाओं पर अत्याचार और भी अधिक बढ़ जाते हैं। आज भी हमारे समाज में आर्थिक तथा सामाजिक सत्ता पुरुषों को स्थानांतरित होती है जबकि महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में कभी भी बदलाव नहीं आता। विस्थापन के मुआवजे के रूप में पुरुषों को रोजगार के अवसर मिल जाते हैं। महिला को अपने परिवार की देखभाल के साथ ही बाहर के अन्य कार्यों में शामिल किया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश की असली पहचान उसकी सांस्कृतिक विरासत होती है। जब व्यक्ति से उसकी पहचान छीन ली जाती है तो उसका अस्तित्व नष्ट होने की कगार पर आ जाता है। उपन्यास

में कुलभूषण के लिए सबसे बड़ी त्रासदी सांस्कृतिक आघात यह था कि उन्हें अपने कुल की मर्यादा को बनाए रखने के लिए पहले पहचान को गिरवी रखना पड़ता है। जैन धर्म के अनुसार जीवन अत्यंत कठिन होता है। मनुष्य को मांस, मदिरा आदि अनैतिक कार्य से दूर रहना होता है। कुलभूषण जैन मारवाड़ी परिवार से थे जिन्हें अपने जीवन को बचाए रखने हेतु अपने ही धर्म से विस्थापित होना पड़ा। कुलभूषण के रूप में उसकी संस्कृति और पहचान संकट में पड़ जाती है।

'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास की रचनाकार अलका सरावगी सबसे लोकप्रिय और सफल रचनाकार हैं। उनके उपन्यास में सामूहिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ महकथात्मक प्रतिभा है जो अपने समाज की संस्कृति, अस्मिता, अस्तित्व तथा स्वाधीनता के संघर्ष का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करती हैं। उपनिवेशवादियों के क्रूर तथा घातक अत्याचारों के बीच भी अपनी संस्कृति व भाषा को जीवित रखती हैं। अलका जी के उपन्यास में अनेक पात्र हैं जो व्यापारी, नेताओं तथा शिक्षित समाज के अंग हैं। उपन्यास के पात्र यथार्थवादी हैं लेकिन जीवन मूल्यों के तथा आदर्शवाद के साथ। 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में उन भारतीय विस्थापितों की जीवन गाथा है जिन्हें बिना किसी अपराध के अपनी ही भूमि से उखाड़ दिया जाता हैं। अलका जी का यह उपन्यास विस्थापितों के शोषण एवं यातनाओं का दस्तावेज है।

कुलभूषण उन सहज व्यक्तियों में से हैं जो भावनाओं से भरे हुए हैं। कुलभूषण अपने ही भाई के परिवार से अपमानित होते हैं, फिर भी वे कभी हताश नहीं होते हैं। उनकी कुष्टिया में उनके पास एक ही सहारा है और वह है उनकी स्मृति और उनका धर्म जो उन्हें अपनी मौलिक पहचान और अपने पूर्वजों के स्वाभिमान से जोड़े रहता है | इस मूल पहचान पर संकट ना आए, इसलिए वह बस कंडक्टरी में नौकरी करता है। 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में अपनी पहचान छुपा कर बस में कुलभूषण अपनी रोजी रोटी के लिए कुष्टिया से पलायन करके कलकत्ता आता है और कोलकाता के तेलीपाड़ा में भाड़े के छोटे से मकान के एक तल्ले पर रहता है। कुलभूषण का बड़ा भाई धर्म-गोत्र पर हैरानी व्यक्त करता- "भूषण

तूने ऐसा क्यों किया ? तूने अपने मां-बाप कुल धर्म गोत्र सब बदल लिए, तूने बंगालिन से शादी की तो चल कोई बात नहीं है। तो उसे अपना नाम बता देता। तू खुद बंगाली बन बैठा? कुष्टिया में हम लोग बंगालियों के बीच बंगाली बनकर रहते थे, उन्हीं की भाषा बोलते थे, उन्हीं की तरह साग-सब्जी खाते थे, पर क्या हमने अपने नाम गोत्र बदल लिए थे।"[26]

भूषण के पास बोलने को कुछ नहीं है। वह यह तो नहीं बोल सकता था कि बंगाली पाड़ा यानी मोहल्ले में रहता है इसलिए नाम बदलना पड़ा। तब क्या बोले ? "भैया, कुष्टिया से जैसे हमें भगाया गया क्योंकि हम मुसलमान नहीं थे, वैसे ही मुझे तेलीपाड़ा से भगा दिया जाता। मुझे गोपाल चन्द्र दास बनना पड़ा। मोहल्ले के लड़के दुर्गा पूजा पर चंदा मांगने आये, तो कहा, जैन बाबू, पांच हजार से कम नहीं लेंगे आपसे, आप तो बड़े आदमी है। इससे कम देने से आपको पाड़ा में रहने नहीं देंगे।"[27] किसी भी व्यक्ति को अपने देश की संस्कृति से जुड़े रहने में धार्मिक परिस्थतियों की विशेष भूमिका रहती है। कुलभूषण अपने देश से विस्थापित होकर कलकत्ता जाने वाले लोग अपने साथ भगवान की मूर्तियाँ और कई प्रकार के धार्मिक ग्रन्थ ले जाते हैं। यही धार्मिक विश्वास उन्हें जीवन में आने वाली परिस्थतियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है।

साम्प्रदायिक शब्द सम्प्रदाय से निर्मित है जिसका अर्थ होता है, किसी एक धर्म या एक मत को मानने वाले व्यक्तियों का समूह। जब किसी एक सम्प्रदाय का व्यक्ति अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ एवं दूसरे के सम्प्रदाय को हीनता की दृष्टि से देखे तो वह साम्प्रदायिक मानसिक शैथिल्य कहलाता है। आधुनिक युग में सांप्रदायिकता सबसे जटिल समस्या है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो किसी विशेष धार्मिक पहचान पर जोर देती है। भारत में सांप्रदायिकता के उदय के मुख्य कारण धर्मों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी जिसका परिणाम यह हुआ कि हिंदू और मुस्लिम दोनों में से कोई भी अपनी सदियों पुरानी शत्रुता को भूल नहीं पाया था।

डॉ. रमणिका गुप्ता के अनुसार- "आजादी के पश्चात भी हम वोट की राजनीति के लिए देश में धर्म के आधार पर भिन्न-भिन्न सिक्कों को मूल धारा में नहीं संजोया, बल्कि सत्ता पर अधिकार पाने हेतु अधिक चिंतित रहे। जिसके फलस्वरूप धर्म का जातीय स्वरूप अधिक पृथक हो गया।"[28]

कुष्टिया में फैले साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा को सुनकर श्यामा धोबी अधिक चिंतित हो जाता है। उसे पूरा विश्वास था कि यदि किसी को भी उससे जन्म से सम्बंधित घटना के बारे में पता चलेगा तो लोग उसे तिरस्कृत नजरों से देखेंगे। श्यामा धोबी से उसकी माँ ने कहा-"तुझे लड़की कौन देगा? जोगी बाबा तुझे मेरी झोली में डाल गए थे। तेरा खतना हो चुका था। तू न मुसलमान रहा न हिन्दू। यह बात सब जानते हैं यहाँ पर। धोबी बिरादरी अपने से अलग किसी जाति को क्या, अलग गोत्र में भी बेटी नहीं देती। श्यामा ने उस दिन भूलने का बटन नहीं दबाया था। माँ को रोते-झींकते छोड़ वह सीधे लालन शाह की मजार पर गया था। दो रात वहाँ बिना कुछ खाए-पिए पड़ा रहा था। उसके बाद वह घर लौट आया था और हँसते हुए अपना काम ऐसे करने लगा था जैसे कोई बात कभी हुई ही नहीं हो।"[29]

साम्प्रदायिक विचारधारा ने मनुष्यों की नफरतों ने परस्पर एक दूसरे की विरोधी बना दिया है और उनमें विचार शक्ति को ही समाप्त कर दिया है। ऐसे नफरत के माहौल में कुछ मानवीय शक्तियाँ इसे रोकने का प्रयास करती हैं। परन्तु समाज में साम्प्रदायिक तनाव इतना बढ़ गया है कि उसे शांत करने के लिए हिन्दुस्तान के दो टुकड़े तक करने पड़ गए और देश विभाजन की दुर्घटना से लाखों लोग विस्थापन की समस्या से जूझते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास की सम्पूर्ण कथावस्तु विस्थापन से उत्पन्न विस्थापन की त्रासदी पर आधारित है। देश में विभाजन के कारण साम्प्रदायिक भेदभाव बढ़ने लगे, जिसके कारण विस्थापन मुख्य रूप से घटित हुआ। किसी भी देश का विभाजन साम्प्रदायिकता

को लेकर किया गया, परन्तु इसकी आड़ में जो दंगे हुए, जिसके कारण कितने मारे गए और कितने विस्थापित हुए इसका अनुमान भी लगाना मुश्किल है।

वर्तमान समय में हिंदी साहित्य अपने विविध पक्षों को लेकर उभर रहा है। आज के समय में साहित्य को देखने का हमारा नजरियां भी बदल चुका है। कई वर्षों पहले साहित्य की पहचान उसकी भाषा, विचार एवं संवेदना के बल पर होती थी। उस दौरान साहित्य व्यक्ति विशेष प्रधान साहित्य था और समाज को हाशिए रखा जाता था। परन्तु वर्तमान में साहित्य समाज प्रधानता को विशेष महत्त्व देती है। जिस समय देश स्वतंत्र हुआ देश में औद्योगीकरण और शहरीकरण के विकास पर अधिक जोर दिया गया। फलतः विकास के अंधानुकरण के कारण शहरों का विस्तार, बड़े-बड़े उद्योग आदि का निर्माण पूरे जोश से होने लगा। परन्तु इस आधुनिक विकास के दौरान देश को आन्तरिक युद्ध का भी सामना करना पड़ा और देश में अपना आधिपत्य विशेष संस्कृति को आधार बनाकर जमाने की कोशिश प्रारम्भ हुई, परन्तु धार्मिक विभिन्नताओं के कारण देश में एक संस्कृति या सम्प्रदाय का वर्चस्व नहीं बनाया जा सका। परिणामतः आम जनमानस के सपनों की बलि चढ़ाकर देश का विभाजन कर दिया गया। जिसके कारण विभाजन के साथ विस्थापन की त्रासदी का सामना करना पड़ा। इस परिप्रेक्ष्य में कई उपन्यासकारों ने पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ विस्थापन की त्रासदी को अपने उपन्यासों का केन्द्रीय विषय बनाया है। अतः विस्थापन की त्रासदी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन आवश्यक है।

संदर्भ

1. रेणु, फणीश्वरनाथ; जुलूस: https://www.bhartiyasahitya.com, Date: 04-12-2021.
2. तिवारी, डॉ. रामचंद्र; हिंदी का गद्य साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी: 221005; दशम संस्करण; पृ. 840.
3. https://dailychhatisgarh.com; Date: 05-12-2021.
4. राय, प्रो. गोपाल; हिंदी उपन्यास का इतिहास; राजकमल प्रकाशन; 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002; संस्करण, 2016; पृ. 344.
5. सिंह, पुष्पपाल; रावी शती का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्णन प्रकाशन; 1-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002; द्वितीय संस्करण, 2016; पृ. 226.
6. यादव, श्री कृष्ण; कुलभूषण के बहाने विस्थापन की त्रासदी का आख्यान; पुस्तक समीक्षा; https://nationalfrontiers.in Date: 04-12-2021
7. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. कवर पेज.
8. वहीं, पृ. 145.
9. वही, पृ. 146.
10. वही, पृ. 211.
11. शंपा शाह; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए: https://samalochana.com. Date: 04-12-2021
12. https://www.outlookhindi.com, Date: 03-12-2021.
13. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 211.
14. https://www.aajtak.in, Date: 04-12-2021.
15. प्रियदर्शन की कुलभूषण पर टिप्पणी; https://www.outlook.com, Date: 04-12-2021.
16. वही.
17. कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास का एक संस्था द्वारा बनाई गयी एक फिल्म में दिखाया गया है जो 24 अक्टूबर 2020 को प्रकाशित हुई.वही,
18. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 189.

19. वही, पृ. 189.

20. वही, पृ.190.

21. वही, पृ.190

22. पालीवाल, सूरज; उपन्यासों में नोआखली और महात्मा गांधी; आजकल; अगस्त 2021; अंक, पृ. 07.

23. बनास जन; पल्लव; 16/1454, इंदिरा नगर मुख्य रोड, सेक्ट. C, 18, इंदिरा नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, नया अंक, 226016.

24. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 212.

25. त्रिपाठी, चन्द्रकला; नाम अब भी चाहता है वह: कुलभूषण, https://www.specialoveraginews.in. Date: 05-12-2021.

26. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 15.

27. वही, ..

28. गुप्ता, रमणिका; साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे; वाणी प्रकाशन; 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण, पृ. 36.

29. सरावगी, अलका; कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-A, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2020; पृ. 53.